Indian J. Soc & Pol. 03(01): 2016 :123-124 **ISSN 2348-0084(P)**
ISSN 2455-2127(O)

विद्यानिवास मिश्र के साहित्य में लोक–चेतना

अभय शंकर द्विवेदी[1]
[1]असि0 प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)अवधूत भगवान राम पी.जी. कालेज अनपरा सोनभद्र (उ0प्र0) भारत

ABSTRACT

कोई भी साहित्यकार हो उसका एक मन होता है, एक लोक होता है, और वह उस लोक में जीता है, साथ ही उसे अपने साहित्य में उतारता है, इसी तरह की सोच मिश्र जी की भी रही है। उनका भी एक लोकमन रहा है और वे इस लोकमन में गँवई निश्छलता, उदारता, प्रेम तथा दुःख–दर्द, शील–संकोच, दया–धर्म आदि को अपने साहित्य में स्थापित करते हैं। ''मिश्र जी समाज के लिए लोक शब्द का प्रयोग करना चाहते है। उनकी दृष्टि में लोक जहॉ अधिक व्याप्त और सांस्कृतिक अर्थवत्ता से युक्त है, वहॉ समाज कम व्यापक राजनीतिक अर्थवत्ता से।' मिश्र जी के निबंधों के केन्द्र में लोक शब्द है, उनके निबंधों का मूलतत्व लोक और लोक संस्कृति है। प्रस्तुत लेख में विद्यानिवास मिश्र जी के साहित्य में गहरे तक पैठ बनाए लोक चेतना पक्ष का अनुशीलन किया गया है।

KEYWORDS: *साहित्य, लोक चेतना, हिन्दी साहित्य,*

विद्यानिवास मिश्र का नाम आते ही एक ऐसे साहित्यकार का चेहरा आँखों के सामने नाच जाता है, जिसका रचना–काल एवं रचना–प्रदेश दोनों काफी विस्तृत या विराट है। यह एक ऐसा नाम है, जो अपनी विशिष्टताओं के कारण हिन्दी कथा–पटल पर दूर से ही पहचाना जा सकता है। अपने निरालेपन के कारण ही वह सांप्रतिक सच्चाइयों से अपने साहित्य के मार्फत लोहा ले रहे हैं एवं आज के चुनौती भरे यथार्थ की परख रखते हैं जबकि उनके साथी साहित्यकारों की झोली रीतते–रीतते चुक गयी है।

विद्यानिवास विचारों से संवाद करते–करते कब कहानी बुन लेते हैं, यह चकित कर जाता है। वे अपनी पीढ़ी के उन अल्प लेखकों में से हैं जिन्होंने कभी कथ्य कि बलि चढ़ाकर कला का वरदान नहीं चाहा। इसलिए वे कला की तथाकथित स्वायत्तता के कलावादी मुहावरे से दूर–दूर रहे। उनके लिए कला के नाम पर विभ्रम–जाल फैलाना असंगत है– '' लेकिन जब साहित्य का उद्देश्य सामाजिक वास्तविकताओ से विमुख करना, आत्मगत सत्यों को प्रक्षेपित करना, यथार्थद्रोही भाषा का निर्माण करना, शिल्पगत चमत्कार उत्पन्न करना तथा झूठी आधुनिकता का बहाना मात्र हो तो ऐसा साहित्य प्रयोजनहीन हो जाता है। साहित्य सदा समाज के प्रति संबोधित एवं निवेदित होता है, किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं। ''(अमिताभ, *नई कहानी के प्रतिनिधि हस्ताक्षर,* 09)साहित्य अपने समय के जीवन–जगत का दर्पण होता है, अर्थ यह है कि साहित्य मे जो कुछ वर्णित होता है उसका मूल आधार जीवन–जगत ही बनता है। इसीलिए हम किसी भी काल के साहित्य पर दृष्टि डालें उन सभी में किसी न किसी रूप में उस समय के समाज का जीवन सहज रूप में दृष्टिगोचर होता है। हर युग के साहित्यकार का यह प्रयास होता है कि वह जीवन–जगत के सत्य को चित्रित करते हुए अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण निवाह करें। उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र जी का साहित्यकार अपने समय और समाज से सीधी बातचीत करने का आग्रही है। '' वे भारतीय साहित्य, संस्कृति, शास्त्र एवं परम्परा कें अद्यतन ऋषि तथा आचार्य थे। साहित्य को समर्पित था इस संस्कृति–पुरूष का जीवन, लोक संस्कृति के गहरे पक्षधर एवं भारतीय संस्कृति के सही व्याख्याता थे वे''(*विश्वभारती* ,114) वस्तुतः वे संस्कृत के विद्वान थे परन्तु ममत्व उनका हिन्दी से ही था। लोक संस्कृति के गहरे पक्षधर थे वे। ''मिश्र जी समाज के लिए लोक शब्द का प्रयोग करना चाहते है। उनकी दृष्टि में लोक जहॉ अधिक व्याप्त और सांस्कृतिक अर्थवत्ता से युक्त हैं, वहॉ समाज कम व्यापक राजनीतिक अर्थवत्ता से।(मिश्र *संवेदना और शिल्प,* 320) मिश्र जी के निबंधों के केन्द्र में लोक शब्द है, उनके निबंधों का मूलतत्व लोक और लोक संस्कृति है। चाहे उनका निबन्ध 'हल्दी–दूब और दधि–अक्षत', 'ऑगन का पक्षी' , 'मेरा गाँव घर' या 'मेरे राम का मुकुट भींग रहा है' आदि हो सभी में लोक शब्द ही है।

मिश्र जी काफी लम्बे समय से ब्रज क्षेत्र से जुड़े रहे हैं। फलतः इनको निबंधों में ब्रज संस्कृति के भी पर्याप्त रूप से दर्शन होते है। ब्रज के उत्सव जैसे कृष्ण जन्माष्टमी होली आदि को मिश्र जी ने अपने ललित निबंधों में विशेष स्थान दिया है। ''वह आग ही नहीं सुलगाता, भष्म की रोरी भी लगाता है। वह समानता की पिचकारी लिए आता है, पर बहुविधता को मिटाने के लिए नहीं बल्कि एक सलोने रंग में रंगने के लिए।(मिश्र,*छीतवन की छाँह,* 75)''भारत वर्ष में जिस उमंग और श्रद्धा के साथ भगवान श्रीकृष्ण का जन्म–उत्सव मनाया जाता है, उस उमंग और श्रद्धा की एक कहानी है। किसी भी सम्प्रदाय का हो, पर प्रत्येक हिन्दू भाद्रपद कृष्ण अष्टमी की अर्द्धरात्री में आज भी युगों पहले अद्भुत प्रकाश का पुनः उदय वह देखता है (जयति जन निवासी देवकी जन्मवाद)।'' (मिश्र, *तुम चन्दन हम पानी,*,79)कृष्ण के तो वे अनन्य आराधक हैं। श्रीकृष्ण को विश्व के पूर्णतम भाव–पुरूष मानते हैं। मिश्र जी के निबंधों में लोक संवेदना भी देखने को मिलती है। लोक जीवन की दशा को देखकर मिश्र जी के मन में जो उसके प्रति सहानुभूति और

1: Corresponding Author

संवेदना जागृत हुई है वह लोक संवेदना का उदाहरण द्रष्टव्य है– 'गऊ चोरी' निबंध में लोकवृत्ति के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है– ''गऊ चोरी के व्यवसाय के कई रूप है, पशुओं को खूँटे से छोड़कर एक ठीहे (अड्डे) से दूसरे ठीहे पर घूमाते रहना, जब तक उनका समुचित पनहा (प्रतिकार) किसी माध्यम द्वारा वसूल न हो जाए....व्यवसाय इतना सुसंगठित है कि भारतीय दंड विधान की धाराओं की पकड़ में आ ही नहीं सकता।'' (मिश्र,*छीतवन की छाँह,* 35)

मिश्र जी की रचनाओं में भोजपुरी संस्कृति का विशेष प्रभाव है। मिश्र जी ने की स्वयं कहा है कि ''संस्कृत में जनमकर अंग्रेजी का स्तन्य पान किया है पर मुझे छाँह मिली भोजपुरी के धानी आँचर में।'' (मिश्र,*छीतवन की छाँह,* 08)भोजपुरी संस्कृति में भी राम और कृष्ण धर्म के बहुत बड़े आधार माने जाते हैं। 'ऐसी संस्मृतियों के राम' निबंध में राम की उदारता का उल्लेख मिलता है– ''और ठगा जाता हूँ तो राम याद आते हैं। उन्होंने कभी अपने जन को नहीं हराया बराबर खुद हारते रहे। बहुत दिन हुए एक गीत सुना था–

मोरे अइसे सुरतिया के राम त कइसे बिसराई।
अंखिया त उनके जइसे अमवा की फॅकिया।
लिलरा चनरमा के जोति त कइसे बिसराई।
दतवा त उनके जइसे बेइली के कलिया।
ओठवन चुएला गुलाब त कइसे बिसराई।
मेरी स्मृतियों के राम,ऐसी छबियों के राम कैसे उन्हें बिसराऊँ।''
(मिश्र,*तमाल के झरोखे,* 21)

'भोर का आह्वान' इस निबन्ध में 'भोजपुरी' के एक मंगलगीत की पहली कड़ी है।**ऐ भोरे रे भइले भिनुसार चिरइया एक बोले ले',मिरूग गन चुगेंले'** यह गीत विवाह के पाँच दिन पूर्व से विवाह के दिन तक भोर के आह्वान के रूप में प्रथम मंत्र की भाँति उच्चारित होता है।''(मिश्र, विद्यानिवास : *तुम चन्दन हम पानी,*, 120)इसी प्रकार पुत्री स्नेह चित्रण में–बिना बेटी के आँगन सूना–सा लगता है, इसका उल्लेख हुआ है 'काहे बिन सून आँगनवा' निबंध मे– ''भारतीय लोक विश्वास में जिनके कन्या नहीं होती है, वह दूसरे की कन्या का कन्यादान करके तरना चाहता है। कन्या दो कुलों को तारती है, पुत्र केवल एक ही कुल को। अकेली बेटी का बाप होने के कारण कन्या पर मेरी ममता कुछ अधिक है। अनेक कन्याओं वाले लोग मुझे बराबर विवाह के एक गीत की पहली–कड़ी याद आती है–

'काहे बिन सून अॅगनवा ए बाबा,काहे बिन सून लखरॉव।
काहे बिन सून दुअरवा ए बाबा,काहे बिन पोखरा तोहार?
तुहरे बिन सून अॅगनवा ए बेटी,कोइली रे बिन लखरॉव
पूत बिन सून दुअरवा ए बेटीहंसा बिन पोखरा हमार।''
(मिश्र,*तमाल के झरोखे,* 31–38)

'आँगन का पंक्षी' और 'बनजारा मन' निबंध संग्रह के निबंध–आँगन का पंछी' में लोक विश्वास की चर्चा की गयी है। यथा–''कहा जाता है कि जिस घर में गौरैया अपना घोंसला नहीं बनाता, वह घर निरवंश हो जाता है। एक तरह से आँगन में गौरैया का ढीठ होकर चहचहाना, दाने चुँगकर मुडेरी पर बैठना, हर साँझ, हर सुबह कहीं तिनके बिखेरना और घूम–फिरकर फिर रात में घर में ही बस जाना अपनी बढ़ती चाहने वाले गृहस्थ के लिए बच्चों की किलकारी मीठी शरारत और निर्भय उच्छलता का प्रतीक है।'' (मिश्र, *आँगन का पंछी, और बंजारा मन,* 09)

मिश्र जी ने अपने निबंधों में लोकगीतों का अवलम्बन लेकर जो चित्र उपस्थित किया है वह अवर्णनीय है भारतीय लोक साहित्य की पहचान निबंध में उन्होंने जो दृश्य उपस्थित किया है, उसमें समस्त जड़–चेतन अपनी खुशी की अभिव्यक्ति देना चाहता है। पान–सुपारी के माध्यम से इस जीवन में मंगलमय परिस्थितियाँ प्रकट हाती है, लोकगीतों में लोक संस्कृति की जो अमृत–धारा प्रवाहित होती है, वह अनुरागमयी है, जिम्मेदारियों से पूर्ण है, जो मानव के समक्ष जीवन जीने की एक पद्धति प्रस्तुत करती है–

'एक ही बसवा के दुई रे करैली,एक बंसुरी हुई बांस रे। '
एक ही मईया के दुई रे लरिकवा,एक पुता हुई एक धीय रे।। '

जैसे एक बांस के दो करैले फूटते हैं, एक से बाँसुरी बनती है दूसरे से लाठी वैसे ही एक ही माँ से दो संताने होती है एक लड़की बनकर दूसरे घर की खुशी बनकर चली जाती है, दूसरा लड़का बनकर अपने घर का रक्षक बनकर रह जाता है।'' (मिश्र, *परम्परा बंधन नहीं,* 06)

मिश्र जी ऐसी ही परंपरा के एक ऐसे आलोक पुत्र थे जिनकी उपस्थिति ने हमारे लोक–संस्कृति के अध्यायों को अमिट दीप्ति दे दी। उन्होंने अपनी सुदीर्घ साधना के बूते साहित्य और लोक–संस्कृति के बीच एक सेतु निर्मित किया, ऐसा सेतु, जिसने लोक–संस्कृति और साहित्य के दो अनुशासनों को एक दूसरे से जोड़ा और उनके बीच संवाद की निरंतरता को स्थापित किया। मिश्र जी के सोच के संबंध में भले कुछ लोग यह कहते रहे कि आप प्रतिगामी है, लेकिन 'छितवन की छाँह' की भूमिका में विभिन्न अवसरों पर दिये गये व्याख्यानों में और 'भारतीय चिंतन धारा', 'सनातन की खोज ' जैसी पुस्तकों में संग्रहित निबंधों से बखूबी जाहिर हो जाता है कि मिश्र जी अपने समय से उतने ही जुड़े हैं, जितना कि कोई अन्य प्रगतिशील विद्वान। लोक साहित्य के क्षेत्र में आप का मौलिक अवदान रहा है। भोजपुरी, अवधी और मैथिली से लेकर निमाड़ी तक की लोक भाषाओं के आप मर्मज्ञ विद्वान तथा अध्येता थे।

सन्दर्भ

मिश्र, विद्यानिवास : *परम्परा बंधन नहीं,*
मिश्र, विद्यानिवास : *छीतवन की छाँह,*
मिश्र, विद्यानिवास : *तमाल के झरोखे,*
मिश्र, विद्यानिवास : *तुम चन्दन हम पानी,,*
मिश्र, विद्यानिवास : *आँगन का पंछी, और बंजारा मन,*
मिश्र,: *संवेदना और शिल्प,*
विश्वभारती